RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-1, दिसम्बर 2024 जनवरी फरवरी 2025

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 अंक - 1 दिसम्बर-2024, जनवरी-फरवरी-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिल्प-विज्ञान के विभिन्न तत्वों की मीमांसा

रतनलाल कुमावत

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

शिल्प-विज्ञान :

भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिल्प-विज्ञान का स्वरूप अत्यन्त विस्तृत, वैज्ञानिक और बहुस्तरीय रहा है। यह केवल हस्तकला या निर्माण-कौशल तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें युद्ध-प्रणालियों, धातु-विद्या, स्थापत्य-विज्ञान, यान्त्रिक तकनीक, ऊर्जा-सिद्धान्त, मापन-शास्त्र और औद्योगिक विज्ञान तक का व्यापक समावेश देखने को मिलता है। भारतीयों ने शिल्प को कला और विज्ञान—दोनों के समन्वित रूप में देखा, इसलिए हर शिल्प-तत्त्व के पीछे सुसंगत गणित, भौतिकी, रसायन, यांत्रिकी और दर्शन का आधार उपस्थित मिलता है।

शस्त्र और अस्त्र :- प्राचीन ग्रंथ 'शुक्रनीति' इस परंपरा की तकनीकी समझ का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें अस्त्र और शस्त्र का जो वर्गीकरण दिया गया है, वह आधुनिक Weapon Technology की वैज्ञानिक परिभाषाओं के समीप बैठता है। जिन हथियारों को मन्त्र, यन्त्र या किसी नालिकीय तंत्र द्वारा दूर तक फेंका जाता था, उन्हें अस्त्र कहा गया—अर्थात् वे ऊर्जाधारित, दूर-प्रक्षेपित और वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हथियार थे। भारतीय परंपरा में अस्त्र दो प्रकार के माने गए—एक वे जो मंत्र-शक्ति से सक्रिय होते थे, और दूसरे वे जो यांत्रिक तकनीक या मशीन द्वारा छोड़े जाते थे। मंत्र-शक्ति वाले अस्त्रों का आधार प्रतीकात्मक रूप से ऊर्जा-संचालन, ध्वनि-तरंगों और मानसिक संवेग से जोड़ा गया, जबकि यांत्रिक अस्त्रों में वास्तविक भौतिक-यांत्रिक बल का प्रयोग होता था, जो उस समय की उन्नत यांत्रिक समझ को दर्शाता है।

शुक्रनीति में 'नालिक' का उल्लेख विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। नालिक वे यन्त्र थे जिनके माध्यम से प्रक्षेपास्त्र छोड़े जाते थे। इनका वर्गीकरण 'लघुनालिक' और 'बृहत्-नालिक' के रूप में मिलता है। लघुनालिक छोटी नली वाले हथियार थे—जैसे आज की बन्दूकों का प्रारम्भिक रूप—जो निकट दूरी के लक्ष्य को भेदने में सक्षम थे। इसके विपरीत बृहत्-नालिक बड़ी नली, अधिक बारूद-संचय क्षमता और लंबी मारक दूरी वाली प्रणालियाँ थीं, जो आधुनिक तोपों या आर्टिलरी की प्रारम्भिक अवधारणा से मिलती-जुलती हैं। नालिक के छिद्र, बल-संतुलन, दूरी-गणना, प्रक्षेपण-वक्र और धातु की सहन-क्षमता—इन सभी का सूक्ष्म अध्ययन भारतीय तकनीक में मौजूद था, और शुक्रनीति 4.7.181-185 का विवरण इस वैज्ञानिक पद्धति की पुष्टि

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

करता है।

इसके विपरीत, शस्त्र वे हथियार थे जो हाथ में लेकर प्रत्यक्ष युद्ध में प्रयुक्त होते थे—जैसे असि (तलवार), कुन्त (भाला), परशु, खड्ग, गदा आदि। इन शस्त्रों के निर्माण में भारतीय धातु-विज्ञान की गहरी समझ दिखाई देती है। भारत में प्राचीन काल से विकसित वूट्ज स्टील विश्वप्रसिद्ध रहा, जिसकी धार, लचीलापन और कार्बन-संतुलन आज के आधुनिक स्टील से तुलना योग्य माना जाता है। धातु-शोध, गलन, मिश्रण और ताप-संसाधन जैसी प्रक्रियाएँ भारतीय शिल्प-परंपरा में उच्चकोटि की वैज्ञानिक तकनीक के रूप में विकसित थीं। यह उसी परंपरा का परिणाम है कि दिल्ली का लौह-स्तंभ सदियों बाद भी जंग-प्रतिरोधी तकनीक का अद्वितीय उदाहरण माना जाता है।

अस्त्र-शस्त्र-विज्ञान के अतिरिक्त शिल्प-परंपरा में यांत्रिक यंत्रों का भी विस्तृत विकास मिलता है। भारतीयों ने ऐसे यंत्रों का निर्माण किया जो जल, वायु, बल, ध्वनि, गुरुत्व और तनाव जैसे प्राकृतिक सिद्धान्तों के आधार पर कार्य करते थे। प्राचीन ग्रंथों में जल-यंत्र, नाड़ी-यंत्र, स्थलचल-यंत्र, पुल-निर्माण की मशीनें, सिंचाई-चक्र, नगर-रक्षा-यंत्र, ध्वनि-दूरश्रवण उपकरण और विभिन्न माप-यंत्रों का उल्लेख मिलता है। यह दर्शाता है कि भारतीय तकनीक केवल युद्ध पर आधारित नहीं थी, बल्कि कृषि, स्थापत्य, चिकित्सा और समाज-व्यवस्था सभी में वैज्ञानिक सोच का समावेश था।

शिल्प-विज्ञान की यह व्यापकता स्थापत्य और वास्तु-विद्या तक फैली हुई थी। 'मयमतम्' और 'मानसार' जैसे ग्रंथों में भवन, मंदिर, नगर, मार्ग, जल-प्रणाली, अनुपात-विज्ञान, भूमि-मापन, कम्पन-नियंत्रण और दिशानुपात जैसी उन्नत वैज्ञानिक अवधारणाएँ मिलती हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि भारत में निर्माण-शास्त्र कला नहीं, बल्कि गणितीय, ज्यामितीय और भौतिक सिद्धांतों पर आधारित एक सुव्यवस्थित विज्ञान था।

दिव्य अस्त्र :

भारतीय ज्ञान परंपरा में दिव्य अस्त्रों का वर्णन अत्यन्त समृद्ध और वैज्ञानिक प्रतीत होता है। वेदों में अस्त्र अर्थात् मिसाइल के लिए 'हेति' और 'मेनि' जैसे शब्द मिलते हैं, जो इस बात का संकेत देते हैं कि प्राचीन भारतीयों के पास प्रक्षेप्य अस्त्रों की सुविस्तृत समझ थी। दिव्य अस्त्रों को सामान्य शस्त्रों से अलग माना गया, क्योंकि इनमें असाधारण प्रभावशीलता देखी जाती थी। ये अस्त्र या तो प्राकृतिक शक्तियों—जैसे विद्युत्, अग्नि, वायु, जल, अंधकार—से उत्पन्न शक्ति के रूप में समझे जाते थे, अथवा किसी देवता, ऋषि या उच्च शक्तियों द्वारा प्रदान किए गए अलौकिक साधनों के रूप में। इनका उल्लेख वेदों के अनेक मंत्रों में मिलता है, जो स्पष्ट करता है कि वैदिक समाज इन अस्त्र-प्रणालियों को तकनीकी और आध्यात्मिक—दोनों स्तरों पर समझता था।

आग्नेय अस्त्र, जिसे अग्निबाण भी कहा जाता था, इसका अत्यन्त विस्तार से उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। इसके प्रयोग से चारों ओर प्रज्वलित अग्नि फैल जाती थी और उसके साथ तीव्र धुआँ निकलता था जिससे शत्रु बेहोश होकर युद्ध करने की क्षमता खो देते थे। अथर्ववेद में इन मंत्रों के माध्यम से बताया गया है कि आग्नेय अस्त्र चलने पर अग्नि शत्रुओं की आँखों की दृष्टि छीन लेती थी और वे विवश होकर पराजित हो जाते थे। वेद में इन्द्र के उस प्रयोग का भी उल्लेख है जिससे शत्रु बेहोश हुए और उनके सिर काट

लिए गए।

इसी प्रकार वायव्य अस्त्र का वर्णन भी वैदिक साहित्य में अत्यन्त जीवंत रूप में मिलता है। इसे मारुत अस्त्र भी कहा गया है। इस अस्त्र के प्रक्षेपण के साथ आंधी या तूफ़ान जैसी तीव्र वायु उत्पन्न होती थी, जिससे शत्रु सेनाएँ दिशाभ्रमित होकर एक-दूसरे से टकराती थीं और युद्ध-क्षेत्र में उनका अनुशासन पूरी तरह टूट जाता था। अथर्ववेद में उल्लेख है कि इस अस्त्र की शक्ति इन्द्र द्वारा शत्रुओं को चारों दिशाओं में बिखेरने के लिए प्रयुक्त होती थी।

पाशुपत अस्त्र, जिसे रुद्रास्त्र भी कहा गया, अत्यन्त शक्तिशाली अख माना जाता था। इसके संदर्भ ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों में मिलते हैं, जहाँ रुद्र से प्रार्थना की गई है कि उनकी हेति हमें वंचित न करें और इस भयंकर अस्त्र से रक्षा प्रदान करें। यह अस्त्र रुद्र की उग्र शक्ति का प्रतीक था और इसका संरक्षण भी उतना ही महत्वपूर्ण माना जाता था जितना इसका प्रयोग।

ब्रह्मास्त्र का वर्णन वेदों में अत्यन्त गंभीरता और श्रद्धा के साथ मिलता है। इसे ब्रह्मा का अस्त्र माना गया, जिसका प्रहार अनुपम और अजेय बताया गया है। अथर्ववेद में ब्रह्मास्त्र को तपस्या की ऊर्जाओं से जन्य कहा गया है और 'ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते' जैसे मंत्र इस बात को स्पष्ट करते हैं कि यह अस्त्र साधारण नहीं, बल्कि घोर तप और आध्यात्मिक ऊर्जा का घनीकरण था।

आथर्वण अस्त्र का उल्लेख मुख्यत: अथर्ववेद में मिलता है। इसका प्रयोग चोरों, हिंसक पशुओं या ऐसे तत्वों पर किया जाता था जिनको निश्चेष्ट करके पकड़ा जाना हो। इसमें ऐसी शक्ति का वर्णन है जो प्राणी को अस्थायी रूप से निष्क्रिय कर देती है। इसे व्याघ्रजम्भनम् कहा गया है अर्थात् ऐसा अस्त्र जो हिंसक पशु को 'जकड़' दे।

वारुण अस्त्र या वरुण के पाश प्राचीन भारतीय शस्त्र-प्रणाली की अत्यन्त रोचक तकनीक प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद सभी में इनका उल्लेख मिलता है। वरुण के पाशों को नागपाश जैसा बताया गया है—अर्थात् यह शत्रु को सर्प की भाँति लिपटकर बांध लेते थे। यह केवल बंधन नहीं था, बल्कि पाप या अत्याचार करने वाले पर दंड का रूप भी माना जाता था।

संमोहन अस्त्र का वर्णन भी अथर्ववेद में मिलता है। इसके प्रयोग से शत्रुसेना अचानक मूर्च्छित हो जाती थी, और युद्ध में उसकी क्षमता समाप्त हो जाती थी। वेद में यह भी कहा गया है कि इस अस्त्र द्वारा शत्रुओं के हाथ काट दिए जाते थे, जिसका तात्पर्य यह है कि उनकी युद्ध करने की शक्ति पूरी तरह शिथिल हो जाती थी।

तामस अस्त्र का उल्लेख चारों वेदों में है और इसका स्वरूप आज के 'टियर गैस' से मिलता-जुलता बताया गया है। इसके प्रयोग से घना धुआँ फैलता था और युद्धभूमि में ऐसा अंधकार छा जाता था कि सैनिक एक-दूसरे को पहचान नहीं पाते थे। दम घुटने, आँखों में जलन होने और अंगों के शिथिल पड़ने का वर्णन इस अस्त्र के प्रभाव के रूप में मिलता है। इसका एक नाम 'अप्वा' भी था। त्रिषन्धि सेनापति द्वारा इस अस्त्र के प्रयोग का उल्लेख मिलता है, जिसमें संपूर्ण शत्रुसेना नष्ट हो गई।

अग्निपुराण में शस्त्रास्त्रों के पाँच भेदों का वर्णन मिलता है, जो प्राचीन हथियारों की वैज्ञानिक वर्गीकरण-पद्धति प्रस्तुत करता है। इनमें यंत्रों से छोड़े जाने वाले अस्त्र, हाथ से फेंके जाने वाले अस्त्र, फेंककर लौटाए

जाने वाले उपकरण, हाथ में पकड़े जाने वाले शस्त्र और सीधे हाथों से किए जाने वाले युद्ध-उपकरण शामिल हैं। यह वर्गीकरण आधुनिक मिसाइल, हैंडग्रेनेड, रिकॉयल तंत्र, तलवारें और हाथ से चलने वाले अन्य शस्त्रों के समतुल्य दिखाई देता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अस्त्र-शस्त्र-तकनीक और भी स्पष्ट रूप में सामने आती है। उन्होंने यंत्रों को 'स्थितयंत्र' और 'चलयंत्र'—दो भागों में बाँटा है। स्थितयंत्र वे थे जिनकी मशीन एक जगह स्थिर रहती थी, जबकि चलयंत्र ऐसे थे जिन्हें युद्धभूमि में इधर-उधर ले जाया जा सकता था। सर्वतोभद्र, जामदग्न्य, विश्वासघाती, और पर्जन्यक जैसे यंत्र इन स्थिर यंत्रों के उदाहरण हैं। पर्जन्यक को आग बुझाने वाला यंत्र बताया गया है, जो आधुनिक दमकल या फायर ब्रिगेड के सिद्धांत से मेल खाता है।

चलयंत्रों की संख्या कौटिल्य सोलह बताते हैं। इनमे पांचालिक नामक जलसुरंग, शतघ्नी नामक स्तम्भाकार प्रक्षेपक जो सौ लोगों को एक साथ मार सकता था, त्रिशूल, और चक्र जैसे उपकरण सम्मिलित थे। चक्र का प्रयोग करने के आधार पर ही श्रीकृष्ण को चक्रधर कहा गया।

प्राचीन भारतीय शस्त्र-विद्या का यह संपूर्ण वर्णन इस बात का साक्ष्य है कि वेदकालीन और उत्तरवैदिक काल का समाज युद्ध-विज्ञान, ऊर्जा-ज्ञान, यांत्रिक-प्रणालियों और प्राकृतिक शक्तियों के वैज्ञानिक उपयोग में अत्यन्त उन्नत था। यह ज्ञान केवल पौराणिक कल्पना न होकर एक सुविकसित तकनीकी परंपरा का प्रमाण है, जिसमें अस्त्र केवल हथियार नहीं, बल्कि विज्ञान, आध्यात्मिक ऊर्जा और प्राकृतिक शक्तियों का संयोजन थे।

कवच और आवरण :- भारतीय ज्ञान-परंपरा में कवच और आवरणों का वर्णन यह दर्शाता है कि प्राचीन युद्ध-विज्ञान अत्यंत विकसित और वैज्ञानिक था। कौटिल्य ने छह मुख्य कवच बताए हैं। लोहजाल पूरे शरीर को ढकने वाला लोहे का जालीदार कवच था, जबकि लोहजालिका उसका हल्का रूप था जो सिर को छोड़कर बाकी शरीर की रक्षा करती थी। लोहपट्ट हाथों को छोड़कर समस्त शरीर को ढकता था, और लोहकवच विशेष रूप से छाती और पीठ की सुरक्षा के लिए बनाया जाता था। सूत्रकंकट पक्के सूत से बना हल्का रक्षा-कवच था जो कमर और कूल्हों की रक्षा करता था। मिश्रित कवच सूंस और गैंडे जैसे प्राणियों की खाल और सींग के मिश्रण से बनता था, जो अत्यंत कठोर और प्रभावी माना जाता था।

इन प्रमुख कवचों के अतिरिक्त कौटिल्य सात विशेष अंगों की रक्षा के लिए अलग-अलग आवरणों का भी उल्लेख करते हैं—सिर के लिए शिरखाण, गले के लिए कण्ठत्राण, पीठ के लिए कूर्पास, ऊपरी देह के लिए कंचुक, भुजाओं के लिए वारवाण, कमर के लिए पट्ट और पेट की सुरक्षा हेतु नागोदरिका। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय युद्ध-संरचना में शरीर के प्रत्येक संवेदनशील अंग की सुरक्षा के लिए विशिष्ट और सुविचारित तकनीकें विकसित थीं।

मानवीय अस्त्र-शस्त्र :

भारतीय ज्ञान-परंपरा में अस्त्र-शस्त्रों का अत्यंत समृद्ध और विस्तृत वर्णन मिलता है, जो प्राचीन काल की तकनीकी कुशलता, धातु-विज्ञान, यांत्रिकी और युद्धनीति को अत्यंत विकसित रूप में प्रस्तुत करता है। वेदों, ब्राह्मणों तथा अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों में वर्णित मानवीय अस्त्र-शस्त्रों की विविधता यह प्रमाणित करती है कि युद्ध-कला केवल शारीरिक पराक्रम नहीं, बल्कि वैज्ञानिक सोच और तकनीकी नवाचार का

संगठित रूप था।

धनुष का वर्णन चारों वेदों में मिलता है। यजुर्वेद में शिव का धनुष 'पिनाक' नाम से प्रसिद्ध है, और धानुष्क या इषुमत जैसे शब्द धनुर्धारी के विभिन्न रूपों को व्यक्त करते हैं। कौटिल्य के अनुसार धनुष ताल, बाँस, उत्तम लकड़ी तथा सींग से बनाए जाते थे, जिससे स्पष्ट होता है कि इनका निर्माण एक उन्नत शिल्प-विज्ञान पर आधारित था। इसी प्रकार बाण का उल्लेख 'इषु', 'शर', 'सायक' आदि नामों से होता है। इनके अग्रभाग लोहे, हाथीदांत या कठोर पदार्थों के बने होते थे, और कुछ बड़े बाण सौ नोकों और असंख्य पंखों से युक्त बताए गए हैं। रुद्र के बाणों का वर्णन तो इतनी शक्ति वाले अस्त्र के रूप में हुआ है कि वे सैकड़ों लोगों को एक साथ मार सकें।

बाण रखने के लिए 'इषुधि' या 'तूणीर' का प्रयोग होता था। भाले के लिए 'सृक' और 'सृका' शब्द प्रयुक्त होते हैं, जबकि 'हेति' और 'प्रहेति' जैसे नाम प्रक्षेप्य और अधिक भयंकर अस्त्रों के लिए मिलते हैं। 'अशनि' अग्निमय प्रक्षेपास्त्र था, जिसका प्रयोग शत्रुओं को भस्म करने के लिए किया जाता था। 'ऋष्टि' एक विशिष्ट प्रकार का भाला था जिसे देवगण कंधे पर धारण करते थे। चोरों-डाकुओं के दमन के लिए सीसे की गोलियों का भी उल्लेख मिलता है, जिससे प्राचीन काल में धातु-प्रक्षेपास्त्रों के उपयोग का संकेत मिलता है।

कौटिल्य के द्वारा वर्णित हलमुख आयुधों की श्रेणी में शक्ति, प्रास, कुन्त, हाटक, भिण्डिपाल, शूल, तोमर और अन्य विविध नुकीले अग्रमुख अस्त्र सम्मिलित हैं, जो अपनी आकृति और निर्माण के आधार पर विभिन्न युद्ध-स्थितियों में उपयोग में लाए जाते थे। तलवारों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है—असि, निस्त्रिंश, मण्डलाग्र और असियष्टि जैसे नाम उनके विभिन्न रूपों का संकेत देते हैं। 'स्वधिति' छुरीनुमा शस्त्र था, जबकि चौड़ी धार वाला 'परशु' अत्यंत तीक्ष्ण और प्रभावी अस्त्र माना गया है। 'क्षुर' और 'वाशी' जैसे शस्त्र लोहे से बने धारदार उपकरणों के रूप में विख्यात थे। ऋग्वेद में उल्लिखित 'कृपाण' भी युद्ध में प्रयुक्त एक महत्त्वपूर्ण शस्त्र था। शूल और चक्र दोनों अपनी तीक्ष्णता और मारक क्षमता के कारण अत्यंत प्रभावकारी माने जाते थे।

वज्र का उल्लेख डाइनामाइट-सदृश शक्तिशाली उपकरण के रूप में किया गया है, जिसके द्वारा पर्वत काटे जा सकते थे। इसी प्रकार 'उल्का' जलते हुए अग्निगोलों के रूप में वर्णित है, जिसे चारों दिशाओं में छोड़कर शत्रु को दग्ध किया जा सकता था। इन सभी वर्णनों से यह विवेचन मिलती है कि प्राचीन भारत में अस्त्र-शस्त्र केवल युद्धोपकरण नहीं थे, बल्कि एक उन्नत शिल्प-विज्ञान, धातु-कला, अग्नि-विज्ञान तथा यांत्रिकी के अत्यंत व्यवस्थित और गहरे ज्ञान के प्रतीक थे।

रासायनिक और शत्रुनाशन :

भारतीय ज्ञान-परंपरा में रासायनिक और धूम-आधारित अस्त्रों का उल्लेख युद्ध-विज्ञान की एक ऐसी शाखा को सामने लाता है, जिसमें औषधियों, खनिजों और वन्य प्राणियों से उत्पन्न रासायनिक प्रभावों का प्रयोग शत्रु को निष्क्रिय या नष्ट करने के लिए किया जाता था। वेदों तथा अर्थशास्त्र में मिले संकेत बताते हैं कि उस समय विषविज्ञान, धूमविज्ञान और औषध-शोधन की गहरी समझ थी, जिसके आधार पर कई प्रकार के तामस, संमोहन और उन्मादकारी अस्त्र बनाए जाते थे।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में ऐसे अस्त्रों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। धूमाक्षी जैसे अस्त्रों को शत्रु पर फेंकने पर घना विषैला धुआँ निकलता था, जो आँखों में प्रवेश करके शत्रुओं को अंधा कर देता था। कुछ मंत्रों में यह वर्णन है कि ऐसा धुआँ शत्रु का दम घोंट देता था और पूरी सेना को निष्क्रिय कर देता था। त्रिषन्धि जैसे सेनापति के द्वारा इन धूम-अस्त्रों का उपयोग कर शत्रुसैन्य के विनाश की कथाएँ इस तकनीक की प्राचीनता का संकेत देती हैं। संमोहन अस्त्र का उद्देश्य सीधे मारना नहीं था, बल्कि शत्रु को बेहोश या अचेत करना था ताकि बाद में उसे आसानी से नष्ट किया जा सके।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के चौदहवें अधिकरण में विस्तृत रूप से ''परघातप्रयोग'' का वर्णन किया है, जिसमें विविध औषधियों, विषैले प्राणियों और रासायनिक मिश्रणों के प्रयोग से शत्रु को हानि पहुँचाने की विधियाँ दी गई हैं। यद्यपि ये विवरण मिथकीय और वास्तविक तकनीक के मिश्रण मालूम होते हैं, फिर भी वे इस बात का प्रमाण हैं कि उस समय रासायनिक प्रतिक्रियाओं और विष-प्रभावों की गहरी अनुभवजन्य समझ विद्यमान थी।

इन वर्णनों में तत्काल प्राणहर धूम का उल्लेख है, जो भिलावा, बकुची और विषैले जीवों के चूर्ण से उत्पन्न होता था और जिसके धुएँ से त्वरित मृत्यु हो जाती थी। इसी प्रकार काले साँप के साथ प्रियंगु मिलाकर बने धुएँ को भी घातक माना गया है। हवा की दिशा में विष-युक्त धूम फैलाकर दूर तक शत्रुओं को मारने के उपाय इस विज्ञान की रणनीतिक सूझबूझ को दर्शाते हैं। कुछ मिश्रण ऐसे बताए गए हैं, जिनके धुएँ से आँखें अंधी हो जाती थीं, जैसे कि पूतिकीट, शतावरी, बकरे के सींग और मछली के मिश्रण से बनने वाला अंधीकरण धूम। साँप की केंचुली, गाय का गोबर, और विषैले सर्पों के मस्तक से बनने वाला धूम भी इसी प्रकार आँखों की ज्योति नष्ट कर देता था।

कुछ योग जल को विषाक्त बनाने के लिए बताए गए हैं, जैसे पक्षियों की विष्ठा और विषैले पौधों के दूध से बना अंजन, जो जलाशयों को जहरीला कर सकता था। अर्थशास्त्र में ऐसे भी योग हैं जिनके द्वारा रोग उत्पन्न किए जाते थे—जैसे गिरगिट और छिपकली के मिश्रण से नेत्रज्योति का नष्ट होना या कोढ़ और प्रमेह जैसे रोग उत्पन्न होना। इसी प्रकार कूट वृक्ष, कौडिन्य कीड़े और महुआ के मिश्रण से ज्वर फैलाने वाले योगों का वर्णन यह दर्शाता है कि रासायनिक युद्ध केवल हथियारों से नहीं, रोगोत्पादक तत्त्वों से भी लड़ा जाता था।

निष्कर्षत: भारतीय ज्ञान-परंपरा में शस्त्र-अस्त्र, रसायन-विज्ञान, धातु-कला और औषध-विज्ञान का अत्यंत विकसित और बहुआयामी रूप विद्यमान था। वेदों से लेकर अर्थशास्त्र तक के ग्रंथ बताते हैं कि प्राचीन भारत में युद्ध केवल तलवार-भाले तक सीमित नहीं था, बल्कि यांत्रिक, मंत्र-आधारित, धूम-आधारित, विष-युक्त और संमोहनकारी अस्त्रों का प्रयोग भी व्यापक रूप से होता था। धूमाक्षी, संमोहन और तामस अस्त्र जैसे रासायनिक अस्त्रों से शत्रु को अंधा, बेहोश या मृत करने की तकनीकें ज्ञात थीं। कौटिल्य ने तो रासायनिक मिश्रणों, औषधियों और विषैले तत्वों के उपयोग से शत्रु को हानि पहुँचाने की विस्तृत विधियाँ दी हैं—जिनमें प्राणहर धूम, अंधीकरण धूम, जल-विषाक्तकरण और रोगोत्पादक योग शामिल हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *'कौटिल्य अर्थशास्त्रम्' — वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011*
2. *'शुक्रनीति' महर्षि शुक्राचार्य चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी — प्राचीन ग्रंथ*
3. *'अर्थशास्त्र और युद्धनीति' - टी एन बनर्जी, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1962*
4. *The Rigveda and Vedic Weaponry - Shrikant Talageri New Delhi 2000*
5. *Ancient Indian Technology and Engineering - Subhash Kak Motilal Bansidas, Delhi 2015*
6. *प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, ए.एस. अल्तेकर, इलाहाबाद 1959*
7. *प्राचीन भारत और शासन व्यवस्था, राधाकृष्ण चौधरी, भारतीय भवन, पटना 1973*
8. *प्राचीन भारत की दण्ड नीति, योगेन्द्रनाथ वागची, कलकलत्ता 1961*
9. *प्राचीन भारतीय युद्ध कला और शास्त्र, डॉ. केशवपाल सिंह, दिल्ली, 2015*
10. *कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित शासन व्यवस्था (आज के परिप्रेक्ष्य में), प्रो. विमल किशोर मिश्र, डॉ. वीरेन्द्र प्रसाद यादव बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2018*